संख्याओं के बीच

विश्वकवि रवीन्द्र
की १२५वीं जयन्ती
के अवसर पर
प्रकाशित

संख्याओं के बीच
सम्पादक
डॉ० नगेन्द्र चौरसिया
आवरण
मदन सूदन

प्रकाशक
स्वर समवेत
६, तनसुक लेन
कलकत्ता-७००००७

मूल्य
तीस रुपये

मुद्रक : भागचन्द सुराना
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५, रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

SANKHYAON KE BEECH
Poems By Businessmen & Office Executives
Edited by Dr. Nagendra Chaurasia

अभिव्यक्ति की तलाश

कविता का संबंध दिल और दिमाग से है और कविता की रचना-प्रक्रिया विचार और अनुभव के बंधन को खोलती है साथ ही यथार्थ को भी प्रभावित करती है, जिसके लिए कवि को भाषा, छन्द, अलंकार आदि के नए माध्यमों को खोजने के लिए जग में लगातार घूमना पड़ता है।—

> परम अभिव्यक्ति
> लगातार घूमती है जग में
> पता नहीं जाने कहाँ, जाने कहाँ
> वह है
> इसीलिए मैं हर गली में
> और हर सड़क पर
> झाँक-झाँक देखता हूँ हर एक चेहरा
> प्रत्येक गतिरोध
> प्रत्येक चरित्र
> वह एक आत्मा का इतिहास
> हर एक देश व राजनैतिक परिस्थिति
> प्रत्येक मानवीय स्वानुभूत आदर्श
> विवेक-प्रक्रिया, क्रियागत परिणति !!
> खोजता हूँ पठार······पहाड़······समुन्दर
> जहाँ मिल सके मुझे
> मेरी वह खोई हुई
> परम अभिव्यक्ति अनिवार
> आत्म संभवा।

मुक्तिबोध। अँधेरे में। चाँद का मुँह टेढ़ा है।

और इसके लिए निरन्तर जूझना पड़ता है जिससे उसे बहुत सारी मन-स्थिति

परिस्थितियों से गुजरना होता है। जो कवि मानवीय आदर्श के लिए जितनी गहराई से गुजरेगा और समझेगा उसका अनुभव संसार भी उतना ही विस्तृत और गहरा होगा तथा सौन्दर्य अंतरान्वेषण भी उतना ही स्पष्ट और प्रभावशाली होगा। पिछले दशकों में जिन कवियों ने अपने समय के यथार्थ और सौन्दर्य अंतरान्वेषण की दूभर और दुस्सह यातनाएँ सहकर कविताएँ लिखीं, वे आज भी महत्वपूर्ण कवि हैं और भविष्य में भी रहेंगे। हर रचना कसमसाहट से आती है, चाहे सौन्दर्य, प्रेम, उल्लास की कविताएँ हों, प्रकृति से प्रभावित हो या मानवीय यंत्रणा और भयावह अपघातों से उपजी कविताएँ हों, सभी यातना से सृजित होती हैं। उक्त पंक्तियों में कवि मुक्तिबोध गली से लेकर देश, पहाड़, समुद्र और सारी मानवीय स्थितियों के बीच तड़प के साथ अपनी परम अभिव्यक्ति को तलाश रहा है।

लेकिन जब देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक स्थितियाँ ही दृष्टिहीन और आधुनिकता के नाम पर समाज का ऊपरी ढाँचा लगातार निचले बुनियादी ढाँचे को स्वार्थ और दिखावे की खातिर नष्ट और शोषित करते हुए, नयी संरचना को दिशा भी न दे पा रहा हो तब कवियों का दायित्व अधिक बढ़ जाता है और तलाश की प्रक्रिया में नयी अभिव्यक्ति के कई खतरों से लड़ने को तत्पर होना पड़ता है तथा अपने समय में हो रही घटनाओं पर नज़र रखते हुए परिवेश के सूत्र को भी पकड़े रहना पड़ता है। कवि वस्तुतः परिवेश का अंग है और साथ ही समाज की आँख भी है, जिसके द्वारा समाज-जीवन को देखता, समझता और विश्लेषित करता है।

पिछले तीस-पैंतीस वर्षों पहले के कवियों ने प्रतीकों को गढ़ कर पुरानों में नया अर्थ भरा और कविता को जो नयी दिशा दी थी, उसीको परवर्ती कवियों ने विद्रोह की ओर मोड़ दिया और स्वाधीनता के बाद जब मोहभंग हुआ तो उसे विरोधी परम्परा के रूप में आगे बढ़ाया गया—इसमें भाषा बदली, मिथक और प्रतीक नए अर्थ में प्रयुक्त हुए, देशज अनुभूतियों और परिवेश को साफ-साफ व्यक्त किया गया और सम्प्रेषण के योग्य बनाया गया। इन कविताओं में जो यथार्थ व्यक्त हुए वे बाहरी ही नहीं बल्कि अन्तर्जगत के भी हैं। कविता में इन दोनों यथार्थों का महत्व है। आज कविता का अर्थ वह नहीं है जो पहले था। अब कवि अपने दायित्व से परिचित है, इसलिए वह कवि कहलाने में विश्वास नहीं करता, बल्कि समय की समस्त घटनाओं से सचेत होकर—लोगों की समस्याओं को व्यक्त करता है। इसीलिए धूमिल की राय में "कवि एक जिम्मेदार व्यक्ति होता है, जो समाज की पशु प्रवृत्तियों पर सांघातिक चोट

करता है और कविता की भाषा में, अपनी सहज आत्मीयता से इन छद्मवेशी पशु आचरणों के पीछे छिपे सामाजिक तथ्यों का उदघाटन करता है।— लेकिन अपनी सामाजिक विशेषताओं और संस्कारगत मनोगतवादी अवधारणाओं के कारण, वह अन्तर्विरोधों की वर्गीय अन्तर्वस्तु को अमूर्त छोड़ देता है और यहीं पर कविता जीवन-गत मूल्यों से अलग हो जाती है। जीवन मूल्यों से पृथक किसी साहित्य की बात करना अपने आप में बहुत बड़ा फ्राड है"—

रचनाकार (कवि) भी हाड़मांस का बना संवेदनशील व्यक्ति है। करोड़ों लोगों की तरह वह भी सामाजिक निर्माण में लगा हुआ सामान्य आदमी है। वह भी रोटी-रोज़ी के लिए मेहनत करता है—समाज एवं व्यवस्था में व्याप्त षड्यंत्रों के विरुद्ध लड़ता है। वह आकाश की दुनिया में ख्वाब बुनने वाला फरिश्ता नहीं होता, बल्कि यथार्थ की ठोस ज़मीन पर खड़ा अपने समय का सचेत प्रहरी भी होता है। इन स्थितियों से जूझने वाला कवि ही अपने समय का दस्तावेज़ प्रस्तुत कर सकता है और इसके लिए चाहिए अनुभव की गहरी पैठ। यह तभी संभव है जबकि उसमें व्यापक ज्ञान और अनुभव हो तथा लोक जीवन और शास्त्र की जानकारी भी हो।

रचना का संबंध रचनाकार के संस्कार और उसके परिवेश से है, जैसा कि पहले भी संकेत कर चुका हूँ। परिवेश से रचनाकार अनुभव प्राप्त करता है और संस्कार से देखने तथा व्यक्त करने का ढंग; अनुभव उसके व्यक्त करने के कलात्मक रूप का ज्ञान प्रदान करता है। मतलब यह कि रचनाकार संवेदन के द्वारा अपने आस-पास जो कुछ देखता-सुनता और भोगता है उसे आत्मसात करता है और अनुभव तथा ज्ञान-क्षमता के द्वारा कला के रूप व्यक्त करता है (इसमें उसके संस्कार एवं परिवेश से प्राप्त शब्दों का व्यवहार होता ही है।) रचना अपने आप नहीं आती बल्कि भाव आते हैं और सृजन के लिए मजबूर होना पड़ता है। इन्हीं भावों को रचनाकार अपने विभिन्न ज्ञानानुभवों से कलारूप देता है, जो वातावरण और परिस्थितियों से प्राप्त होती हैं। अतः यह माना जा सकता है कि उक्त दोनों ही रचना के उत्स हैं, जिनमें घटनाएं, स्मरण और सोच-विचार सभी मिले हुए हैं। दोनों ही रचनाकार की विचार-प्रक्रिया को परिवर्तित करते हैं। यही कारण है कि पिछले कई दशकों में कविता के विभिन्न पक्षों में बहुत सारे बदलाव आए हैं। आज कविता महान गौरव प्रदान करने वाली वस्तु नहीं है बल्कि संघर्ष को आगे बढ़ाने का हथियार बन गयी है। अब कल्पना के स्थान पर यथार्थ का महत्व है, तुक और छन्दों के बंधन अभिव्यक्ति में बाधक नहीं हैं।

यों तो कविता का रचना संसार वैयक्तिक होता है मगर उसका संबंध समाज से अधिक है। कवि भी तो समाज का ही एक अंग है। प्रस्तुत संकलन में कवियों की कविताएं संकलित हैं, ये कलकत्ते के साहित्यिक माहौल में परिचित हैं और साहित्य की वृद्धि में इनका भी योगदान है। ये प्रकृति में कवि नहीं है, लेकिन विभिन्न कर्मों एवं व्यवसायों से संबंधित हैं। व्यस्तता के बीच जो समय मिल जाता है उसमें पढ़ना-लिखना भी हो जाता है। इनकी इन कविताओं में तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कविताओं में सिद्धान्तों या मतो का आरोपण नहीं है, बल्कि कार्यों के बीच विभिन्न स्थितियो, घटनाओं और बदलावों के साथ ही राजनीतिक घपलों से हुई प्रतिक्रियाओं की शब्दाभिव्यक्ति है। ये कवि तथाकथित विभिन्न वादों के झंडों के संकेतों पर हल्ला मचाने वाले दम्भी या ढिंढोरची कवि नहीं हैं। ये तो संकोची स्वभाव के एकांत साधक कवि हैं। ये विनम्रता से मानते हैं कि कविता प्रकृति में पाई जाने वाली चीज़ नहीं बल्कि साधना और अभ्यास के साथ रची गढ़ी कृति है और इन कविताओं में उक्त तथ्य स्पष्ट होते हैं। इनके काव्य-रूप विषय तथा व्यक्त करने के ढंग इतने सरल और जाने-पहचाने हैं कि किसी रूपवादी आलोचक के लिए सपाट हों, मगर विषय वस्तु, शिल्प स्वाद और सम्प्रेषण आदि में ये कविताएँ पाठक की प्रतिक्रिया प्राप्त करेंगी और इन कवियोके चरित्र कथ, सोच और अनुभूति को स्पष्ट करेंगी। साथ ही समय के चक्र में घटने वाली घटनाओं की उनकी प्रतिक्रिया भी। चूँकि ये कवि किसी खास विचारधारा या आन्दोलन से सम्पृक्त नहीं हैं इसीलिए कहीं आदर्शवादी हैं तो कहीं घोर परम्परावादी तो कहीं यथार्थवादी। यानी ये बलात् विद्रोही नहीं हैं बल्कि आम लोगों की तरह स्थितियों से कभी खुश हैं तो कभी दुःखी। समाज और व्यवस्था में विभिन्न तरह के दिखावेपन, शोषण, और विषमता से ये भी अपनी सीमा में दुखी हैं और खुलकर उसे व्यक्त करते हैं। इनमें संकलित कुछ कविताएं तो ऐसी हैं जो आज के समर्थ कवियों को भी चुनौती देती हैं। इस प्रकार इन कवियों की कविताओं में विभिन्न विचारों, संवेदनों, शैलियों और प्रवृत्तियों की छाया देखी जा सकती है, जिसके कारण इन पर पतनोन्मुख, व्यक्तिवादी, रुग्ण मानसिकता से ग्रस्त कवि होने का दोष लगाया जा सकता है, मगर अपने सम्प्रेषण में ये ईमानदार हैं। कितने ईमानदार हैं इसका अंदाज़ कविताओं को पढ़ने के बाद ही लगाया जा सकेगा। किन्तु यह एक अभिनव प्रयोग है, इसको तो नकारा नहीं जा सकता।

नगेन्द्र चौरसिया

संख्याओं
के
बीच



चिरंजी लाल

चिरंजीलाल



जन्म : १२ मार्च १६१६ रतनगढ़ (राजस्थान)
शिक्षा : वाराणसी में
१६ वर्ष की आयु में चिरंजीलाल चमड़िया (अग्रवाल) चाय बगान के क्षेत्र में
अप्रेंटिस के रूप में प्रविष्ट हुए और बीस वर्ष के अन्तराल में
फ़ासकोवा टी इस्टेट के मैनेजिंग डायरेक्टर के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

लेखन हिन्दी और अंग्रेज़ी दोनों भाषाओं में

प्रकाशित पुस्तकें

टी टेस्टिंग प्रोसेस एंड ग्लोसरी
भारतीय चाय उद्योग का इतिहास
चाय का वनस्पति शास्त्र
१६७० में विश्व भ्रमण। यूरोप, अमेरिका, जापान, इत्यादि देशों की यात्राएँ।
१६८५ में सोवियत संघ की यात्रा।

भारत-सोवियत मैत्री संघ के आजीवन सदस्य
मास्को-न्यूज़ क्लब कलकत्ता के संस्थापक सदस्य
अदाकार नाट्य संस्था के वर्षों तक उपाध्यक्ष
पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ, निबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं।

आस्तिक और नास्तिक



मृत्यु-भय-ग्रस्त,
आस्तिक हूँ
संकट टल जाने पर,
नास्तिक हूँ। ✿

न्यायालय



बड़े बड़े वकील
न्यायमूर्ति जज को सत्य समझाते हैं
असत्य की विजय कराते हैं
विपुल धन-राशि पाते हैं।

देखता रह जाता है निर्धन
कैसे क्रय कर लेता न्याय को धन! *

शॉक-प्रूफ



ज़िन्दगी की ऊबड़-खाबड़,
टूटी-फूटी सड़क पर,
झटके खाते-खाते,
मैं अब 'शॉक-प्रूफ़' हो गया हूँ।

धूल और धुएँ भरी हवा,
अब मेरा कुछ नहीं बिगाड़ पाती
क्षय रोग से ग्रस्त
सूखी छातियाँ,
अब और खून नहीं निकाल पातीं
राक्षसी गाड़ियाँ···आती-जाती,
मेरी ज़िन्दगी को अब डरा नहीं पातीं।

गड्ढे कीचड़ भरे,
रास्तों पर चलते चलते,
मैं अब पक्का हो गया हूँ।

मज़दूर

●

चेरी ब्लॉसम की शू-पॉलिश सा
चमकता मज़दूर का वदन,
पसीने से भींगा, थका तन-मन,
कहता देखो—कितना शोषण !

चिलचिलाती धूप नंगे पाँव
घोड़े सा दौड़ता रिक्शावाला
बैल सा बोझ ढोता
पूछता
ढोना कब तक ?

कहता कहानी असफलता की,
पंच-वर्षीय योजनाओं की,
मनुष्य की निर्ममता की
मनुष्य के द्वारा मनुष्य पर। ❋

हाई-सोसाईटी



इस हाई-सोसाईटी में
चका चौंध करती वेष-भूषा में
'देवियों' और 'सज्जनों' की काया में
मेरी आँखें तलाश करती रहती हैं कुछ
जिसका अभाव मुझे खटकता रहता है।

इन यौवन-भार से लदी नारियों में,
स्वप्न सी सुन्दर सुकुमारियों में,
वृद्धों के गरिमामय मुखों पर,
युवकों में
मेरी आँखें तलाश करती हैं—
एक सुन्दर आत्मा—
सतत तलाश करती रहती हैं
निरन्तर……खोजती रहती हैं। ❁

शब्द



आदमी की आदमी से दुश्मनी
दोस्ती में बदल गयी होती
अगर ग़लत शब्दों की
मुँह से गोली न चली होती !

कठोर शब्द की चोट—
लाठी की मार से गहरी है,
हथौड़े की चोट से करारी है
जो नींद कर देती हराम !

दुनिया में फैल गयी होती खुशहाली,
अगर चुभते शब्दों की हो जाती थोड़ी सी कमी !

न किसी के जीवन में ज़हर घुलता,
न कोई विक्षिप्त होकर तड़पता,
अगर शब्दों पर होता थोड़ा सा नियंत्रण ।
आसान हो जाता समस्याओं का हल,
अगर ईमानदार शब्दों का थोड़ा सा इस्तेमाल होता ! *

शहर भोपाल

●

कठिन जीना
मुश्किल साँस लेना
पूँजीवादी संस्कृति में
शोषण की व्यवस्था में ।

घर कितने मँहगे,
शिक्षा कितनी मँहगी,
चिकित्सा दुर्लभ,
बेकारी की बड़ी पीड़ा।

धूर्त नेताओं के पाँव तले,
सपने जाते कुचले
लोग रोज़ मरते
बड़े दुःखी
कोई तरसता
बस में, एक सीट की खातिर,
कोई सपना देखता
कार के नए मॉडल के लिए ।

हवा विषाक्त, जल ज़हरीला,
दुर्बल स्वास्थ्य, चेहरा पीला
मर गया शहर भोपाल,
गोलमाल ही गोलमाल ।

भाग गया राज्यपाल ।
कहाँ गया राज्यपाल ?

मल्टी-नेशनल दस्यु-लूट रहे
रक्तबीज से बढ़ रहे

शांति चाहिए, युद्ध नहीं
जीवन चाहिए, मृत्यु नहीं । ●

भ्रष्टाचार



मेरे यार
गुस्सा मत हो,
भ्रष्टाचार है हमारे गले का हार !

हमारे देश में चमत्कार ही चमत्कार,
घूसखोरी, चोरी, व्यभिचार अपार !

मेरे यार !
मत क्रुद्ध हो,
न जलाओ अपना खून,
मत करो ज्यादा सोच विचार
बोल, जय भ्रष्टाचार, जय दुराचार !*

मेरे बेटे



मेरे प्यारे बेटे !
मुझे दुःख है
तुम आदर्शवादी हो।
और……
यह संसार
बहुत स्वार्थी जालिम और खूँखार है।

मैं चिन्तित हूँ तुम्हारे लिए,
तुम इसमें कैसे रहोगे !
कैसे चलोगे !
इस देश में तो कालाधन चलता है।

सोना और चाँदी रक्त से नहाए रहते हैं
सत्यप्रिय और सत्यकाम,
यहाँ जूझ-जूझ कर मरते हैं
यहाँ नकली नोट चलते हैं
असली और बड़े….
रद्दी के भाव बिकते हैं !

मेरे प्यारे बेटे
मुझे चिंता है। ❁

मेरा संकट



जब मुझे
कोई
अति भक्ति से नमन करता है,
तो मुझे डर लगता है…
कहीं वह मुझे ठग न ले !

जब कोई मुझे
हाथ नहीं जोड़ता,
मेरे पांव नहीं पड़ता
तब भी मैं डर जाता हूँ
उसे विद्रोही समझ लेता हूँ
मुझे उससे सत्ता छिन जाने
मार खाने का भय लगता है !

पर, जब मैं, किसी आदमी को
काम में व्यस्त देखता हूँ,
तो…बड़ा…खुश…होता हूँ। *

शाँति के लिए



हम, धरती पर रहने वाले लोग,
हर मौसम से करते शिकायत।

व्यर्थ के झगड़ों में पड़े,
अपनी ज़िद पर अड़े
बहुमूल्य शाँति से वंचित,
अतीत और भविष्य से चिपके
वर्तमान को सदा नकारते।

हम, परायों को अपनाने वाले
मित्र बनाने वाले
अपनों से दूर भागते
त्याज्य को स्वीकारते,
ग्राह्य को ठुकराते।

हम हमेशा रोने वाले लोग,
कभी नहीं मुस्कराते! ●।

लेनिन



डर से थर थर काँपते,
कठोर-श्रम से-हाँफते,
पीले, फीके चेहरे वाले,
पसीने से नहाए लोग
असहाय, नीम-कड़ुवे,
स्तब्ध, दबे हुए

उनका मित्र, नेता
पथ-प्रदर्शक—
तेजस्वी सूर्य सा,
उग्र, उद्धत, प्रखर,
लेनिन ! *

कवि मायाकोवस्की



हे विप्लवी कवि !
तुम्हारी सशक्त वाणी,
तुम्हारी कृतियाँ,
तुम्हारी कविताएँ,
गूँज रही हैं—
जन-मानस की चेतना में ।

तुमने नव युग की घोषणा की
उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की
तुम्हारी वाणी में मेघ-गर्जन था
विद्युत की तड़प थी
तुमने भर दी बन्दूक की गोलियाँ शब्दों में ।

गोर्की की आँखों के आँसुओं को,
लेनिन के विचारों को,
साकार किया कविता में
किन्तु,
स्वयं के प्रचंड आवेगों से,
नहीं बचा सके अपनी जिन्दगी । ❁

कविता ? मेरे लिए !



चंद शब्द बड़ी बात,
गागर में सागर
कविता से जीता हूँ,
कविता में जीता हूँ ।

कविता जीवन की सच्चाई—
मेरे हृदय का स्पदंन है, कविता !
मेरी आत्मा का क्रंदन है, कविता !! *

नौरतन मल भण्डारी

नौरतन मल भण्डारी



जन्म : १० अक्टूबर १९४०
जन्म स्थान : जोधपुर (राजस्थान)
व्यवसाय : नौकरी कम्पनी सेक्रेट्री
शिक्षा : एम कॉम, बिजनेस मैनेजमेंट
कलकत्ता : १९६९ (ब्रिटिश इंस्टीट्यूशन)
अतिरिक्त व्यवसाय :
डायरेक्टर पब्लिक प्रतिष्ठानों में
बंगाल डिस्पले लि०
बंगलक्ष्मी स्टील ट्रेडिंग कं० लि०
सुप्रा एक्सपोर्ट्स लि०

रुचियाँ : संगीत, उर्दू शायरी
प्रकाशन : विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में *

एक आहट से



एक आहट से
उमड़ने लगता है मेरे भीतर
समुद्र-ज्वार
और वसन्त भी करने लगता है
मेरे साथ
तुम्हारा इन्तज़ार !

क्षणिक उजाला जब भी होता है



क्षणिक उजाला जब भी होता है
मेरे घर में
तो दीखने लगते हैं चेहरे
अन्धकार में खोये हुये,
कब कोई कितना बीत जाता है
पता नहीं चलता। *

हताश आँखें



हताश आँखें
होठों पर कम्पन
हाथ-पाँव चलते हैं
मानो तार से बँधे
किसी कठपुतली की तरह हिलते हैं

क्या इसी को जीवन कहते हैं ! *

डिग्रियों का पोथा



डिग्रियों का पोथा
बोझ लगने लगा है मुझे

झूठे आश्वासन
घुटन कम नही करते,
काट देते है उन हाथों को ही
जिन्हें लालसा होती है
डिग्रियोंकी ! *

झूठ और अहंकार



झूठ और अहंकार
यन्त्र है
कमज़ोरी छिपाने के

क्षण जब भी
उजालों में बदलते हैं
सभी स्तम्भित रह जाते हैं । *

फूल, पत्ते



फूल, पत्ते
बाग,
मन को छू गये,
कहीं
ज़िंदगी का दूसरा नाम
इनकी ताज़गी तो नहीं ! *

कोलाहलों



कोलाहलों
और भीड़ में जाने कहाँ
खो गई है ज़िन्दगी

सदियों से जिसे ढूंढ़ते हैं
मरीचिका बनती जा रही है ज़िन्दगी ! ●

विवेकशील



हम विवेकशील लोग
जानते हुए भी
हिंसा, अन्याय बलात्कार
न जाने क्या-क्या
कर बैठते हैं
और अनजान बनते हैं

पशु-पक्षी ही अच्छे हैं जो
सब कुछ देखते हैं
फिर भी शांत रहते हैं। *

सुबह की लालिमा



सुबह की लालिमा
लाती है नई ताज़गी और सन्देश
देती है नई दिशायें,
मगर जब जब
कलैण्डर की तारीखें बदलती हैं
तब तब आईने में
ढलती उम्र कचोटने लगती है। ❁

लाशें



लाशें
अब कब्रिस्तान में नहीं
शहरों में नज़र आती हैं

ऊंची मीनारों पर
चौराहे पर ;
अपनी अपनी भाषा में
बोलती भी हैं
क्योंकि राजनीति से
इनका गहरा सम्बन्ध है । ❋

ड्राइंग रूम में लगी



ड्राइंग रूम में लगी
पुरखो की तस्वीरें
घूर घूर कर
देख रही हैं
और हंस रही हैं मेरी ज़िन्दगी पर।

कह रही हैं
कायरता से जीना
आत्म सम्मान खोना है
यानी मोती खोना है जीवन भर रोना है

सचमुच ये अनुभवी बेजान
बहुत कुछ कहती हैं!
यद्यपि दीवार पर टँगी रहती हैं! ●

अपने सपनों को



अपने सपनों को
रोज निहारता हूँ
जो रहते है अधूरे ही।

देखना चाहता हूँ मैं
फूल, पत्ते, पहाड़
खुला नीला आकाश;
मगर तुम कितने निर्दयी हो मेरे समय!
कि छीन ली तुमने आँखें!

मैंने सहारा लेना चाहा
संगीत का
वह भी नहीं भाया तुम्हें
होकर तुमने क्रुद्ध
होठों के स्वर छीन लिये मेरे!

मैंने चाहा
आनन्द लूँ खुलेपन में
मगर तुम्हारी नासमझी ने
बेड़ियां डाल दीं मेरे
पाँवों में

मैंने चाहा
मुकाबला करूँ परिस्थितियों का
मगर निर्दयता से तुमने
काट दिये मेरे हाथ-पाँव

क्यों?
तुम जलते हो
प्रतिशोध की आग में
या तुमने वह शक्ति खो दी
जिससे तुम खुद को पहचान सको! ●

अकेलापन

●

अकेला होता हूँ जब
साथ देती है
मेरी तन्हाइयाँ।

आईना भी न जाने क्यों
उदासियों को मेरी
समेट लेता है
अपनी बाँहों में!

दूर आम की डाली पर
बैठी—
कोयल ने भी
तान छेड़ी है मीठी
क्योंकि मैं अकेला हूँ
तन्हा हूँ। ❁

मिटाना चाहते हो मुझे



मिटाना चाहते हो मुझे
मगर मैं मिटने वाला नहीं !

मेरा अस्तित्व तो उस
बरगद के पेड़ की तरह है
जो सैलाब में भी नहीं डूबा
और न हिला आँधी-तूफान में !

मुझमें क्षमता है झुक जाने की
हठी नहीं हूँ मैं तुम्हारी तरह !
और न हूँ निर्दयी !

मिटाना बहुत आसान है
मगर जीवन देना
उतना ही कठिन
जैसे आकाश से
तारे तोड़ना !

कब तुम्हें इस बात का होगा एहसास
और ज्वार सा उछाल खाता
हृदय कब शाँत होगा !

कब बर्फ़ बन कर पिघलोगे
और अनुभव करोगे
शीतलता का तुम ! ❁

भँवर लाल दवे

भँवर लाल दुबे



जन्म : राजस्थान के गाँव में

शिक्षा : कानून में स्नातक तक प्राप्त की, किन्तु अन्तिम परीक्षा नहीं दे पाए

व्यवसाय : लघु उद्योग एवँ भवन निर्माण

लेखन : कविता, कहानी एवँ लेख

रुचि : इतिहास, धर्म एवं विज्ञान में समान रुचि। राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति से विशेष लगाव।

विभिन्न साँस्कृतिक एवँ शिक्षण संस्थाओं से सम्बद्ध। ❋

वेदना

●

तुम्हारी याद ताज़ा कर देती है पावस ऋतु !

बचपन में सुना था
कि मनुष्य मर कर चला जाता है बादलों में
जब होती है बारिश
मैं देखा करता हूँ बादलों को ।

घनीभूत वेदना बन जाते हैं ये बादल
श्रावण की झड़ी
बन जाती है मेरे आँसुओं की लड़ी
रह रह कर कौंधने वाली बिजली
मानो हृदय के गहरे गह्वर में उठने वाली टीस !

लेकिन नहीं दिखती हो तुम बादलों में
जैसे तुम्हारी मृत देह देख कर
होता नहीं था विश्वास
कि तुम में नहीं है अब वह स्पन्दन !

बादल जब जब आते हैं
तुम्हें मानो ज़िन्दा कर जाते हैं
एक आशा जगाते हैं
मुझे असहाय बनाते हैं ! ●

वे दिन



आश्विन के नन्हे बादलों की तरह उड़ गये वे दिन !

मेरा मन भटकता रहा कस्तूरी मृग की तरह
उस गंध को पाने
जो तुममें, मुझमें व्याप्त थी ।

तुम्हारी धवल निर्झर सी हँसी
तुम्हारी अबोल भाषा, नयन-संदेश
अनुराग भरे क्षण
जो थे हमारे साझे के ।

कहाँ गये सब ?
ढूँढ़ रहा हूँ उन्हें ! ❁

दुख



दुख को दर्शन के माध्यम से जाना था मैंने !

बड़े-बड़े शब्द
शब्दों की व्याख्या
मुझे लगा कि मैं जानता हूँ दुख को।

लेकिन हुआ जब साक्षात्कार दुख से
तो महसूस हुआ
कि मेरा जानना कितना था अधूरा।

दुख
शब्दातीत
व्याख्यातीत
अनुभव जन्य सत्य है। ❁

यह



थी जो प्रखर प्रेरणा
जिसके कारण था जीवन निरन्तर गतिमान
जब नहीं रही वह
तो जीवन-संघर्ष क्यों !

रोज़ उदय होता है सूरज
बहती है नदी
चलती है हवा वन-प्रान्तर में
आँखों को ठन्डक देती चाँदनी
सब कुछ है वैसे का वैसा

लेकिन मन में क्यों बजती है रिक्तता !
कहीं होने और न होने की स्थिति !!

जीवन का अर्थ
निरर्थक बनाता हुआ भी
आगे बढ़ाता है। ●

डगर



इसी डगर पर
चले थे हम
हाथ में हाथ डाले ।

ये कंकड़, पत्थर
साक्षी हैं हमारे प्रथम प्यार के ।

पूछते हैं तुम्हारे बारे में
ये डगर, कंकड़, पत्थर
बोलो क्या दूँ उत्तर ?

मेरी तरह
बन जायेंगे ये भी निरुत्तर । ❁

कहीं न कहीं तुम हो



कहीं न कहीं तुम हो
ब्रह्मांड के किसी कोने में।

तुम्हारे स्पर्श की गंध आती है
हवा के झोंकों में
सूरज की किरन बन
मेरे बालों को सहलाती है
आलोकित कर जाती है
मेरे अँधेरे पथ को।

कहीं न कहीं जरूर हो तुम
मुझ में
पहले से अधिक रमी
अधिक बसी। ●

जीवन



तिल तिल जलती हुई बाती
समुद्र के किनारे की एक लहर
तट से टकराती, टूटती
झंझावात में फँसा हुआ पत्ता
हवा में उठता, बल खाता, गिर जाता ।

साँस
प्रतिपल आती जाती
क्या यही सब है जीवन
एक भरम !
होने, न होने का अहसास ! *

व्यवस्था



कब तक इन्सान
सलीब पर टँगा रहेगा ?

कब तक शैतानियत के दरिंदे
इंसानियत का जामा पहने
विचरते रहेंगे ?
है आज की व्यवस्था के पास कोई उत्तर ?

व्यवस्था भी तो
दरिंदों की उपज है। ●

प्रलय के बादलो



ओ प्रलय के बादलो
जम कर बरसो !

नहीं रही धरती
अब इन्सानों के रहने लायक
सत्य, प्रेम, करुणा
मात्र शब्द हैं ।

ओ प्रलय के बादलो
जम कर बरसो
हो जाय महा प्रलय
और उसके बाद
जन्म ले
मानवता का भावी मनु ! ✿

भेड़िए



कभी भाषा के नाम पर
कभी धर्म के नाम पर
भिड़ा देते हैं आम आदमी को
ये राजनीतिक भेड़िए !

बहाते हैं घड़ियाली आँसू
बजाते हैं बंशी नीरो की तरह
रोम के जलने पर ! *

मज़दूर

●

मिल के भोंपू से बँधा है मेरा जीवन !

गरम लाल लोहा उगलती भट्टी
निरन्त बोर करती हुई बोरिंग मशीन
घनाघन घन की चोट करता हैमर
'सा' मशीन मुझे ही चीर रही है
पिघलता हुआ लोहा
मेरा ही लहू है।

चलता रहता है मेरा मशीनी जीवन
जब तक मेरे हमदर्द मुझे नहीं भड़काते

ज्वालामुखी बन जाता हूँ
भोंपू का बँधन तोड़
सड़कों पर आ जाता हूँ
शासन की गोलियाँ
सीने पर खाता हूँ
अलकतरे की काली सड़क
हो जाती है लाल मेरे लहू के रंग से।

है मुझे विश्वास
यहीं पर खिलेगा
नये जीवन का लाल लाल फूल ! ●

रिक्शेवाला



जी हाँ मैं रिक्शेवाला हूँ
भार ढोता हूँ
आपका, आपके बाप का ।

गुस्सा मत होइए साहब
गाली नहीं दे रहा
यह हकीकत है
और फिर मेरी गाली की भी क्या कीमत है !

मैं तो रिक्शेवाला हूँ
भार ढोने वाला हूँ
आप बग्घी में बैठते हैं, रिक्शे में भी
बग्घी घोड़े खींचते हैं
रिक्शे को मैं ।

जी हाँ, मैं
आदम की औलाद
घोड़े की पीठ पर चाबुक
मेरी पीठ पर आपकी ज़बान के कोड़े ।

तेज़ चलो
भाग कर चलो

आप कोड़े बरसाते हैं
मैं चलता जाता हूँ।

जेठ की चिलचिलाती धूप
पाँवों के नीचे पिघला अलकतरा
ऊपर से आपकी घुड़क
सब कुछ सहना पड़ता है

गरीब हूँ, बाल बच्चे वाला हूँ
जी हाँ, कम उम्र में बापू ने ब्याह दिया था
रहा होऊँगा दस-पन्द्रह का
सुखिया भी उतनी ही थी
चूंकि उसके चाचा चाची ने ब्याहा था
सो गौना भी साथ दिया था

कहने लगा हूँ तो कह ही जाऊँ
बात ज़रा पराइवेट है, कैसे समझाऊँ
वे दिन थे
जदपि भूख थी अभाव था
फिर भी जीवन के प्रति लगाव था
सुन्दर सा सपना सुखिया के साथ संजोया था

हरे हरे खेत, दूध देती गाएँ, छोटा सा घर
आँगन में खेल नन्हें बच्चे
हे सर्जनहार! यह क्या किया सर्जन
न घर बना, न खेत, पर बच्चे पूरे एक दर्जन

दाना खाने वाले आए तो दाना न रहा
दो बीघे का खेत
सुखिया की बीमारी में साहूकार के पेट में गया।

देश में पड़ गया अकाल
दाने दाने को मोहताज थे कंकाल
दिन ब दिन मास दर मास

ऐसे ही गुज़रते गए
समय पर संतोष कर, भगवान की मंशा जान
दिन यूँ कटते रहे

फिर किसी ने सुझाई शहर की बात
बस कारखाने मजदूरी
अच्छा जीवन, अच्छे भाग्य की शुरुआत !

तो साहब
चल ही पड़ा, यहाँ आया
इधर-उधर दौड़ा पर नौकरी नहीं मिली
मिल गया इस रिक्शे का मालिक

मेरे जैसे बहुतेरे हैं
जो उसके रिक्शे चलाते हैं
आधा वह, आधा हम पाते हैं
दिन भर की मजदूरी
रुपए पाँच या छः हो जाते हैं

खर्चा, एक रुपए का सत्तू
चार आने दादा के
अरे दादा को नहीं जानते
माधो भवन के सामने फुटपाथ पर सोता हूँ
उसका किराया दादा लेता है

बड़ी मुश्किल से चालीस पचास बचाता हूँ
और वही गाँव भेज पाता हूँ

सात साल हो गये गाँव नहीं गया
रिक्शा चलाता हूँ और आप जैसों से बात कर
मन बहलाता हूँ
हाँ साहब चितपुर आ गया
ट्राम लाइन के इस पार या उस पार !
फिर मिलियेगा, नमस्कार। *

श्याम सुन्दर बगड़िया

श्याम सुन्दर बगड़िया



जन्म बम्बई १६ नवम्बर १६३०।
कलकत्ता विश्वविद्यालय से १६५० में वाणिज्य-स्नातक।
कलकत्ता व दिल्ली में निजी व्यापार व उद्योग।

उन्मुक्त, पुष्ट व परिष्कृत विचार। ढोंग व व्यर्थ रूढ़िवा अपाह्य। आदर्श व सामाजिक परिप्रेक्ष्य में धर्म व दर्शन को समझने का प्रयास। कई सांस्कृतिक, साहित्यिक व सामाजिक संस्थाओं से संबंधित। अध्ययन व विचार गोष्ठियों, तथा वाद-विवाद आयोजनों में विशेष अभिरुचि।

लेख, कविता, गीत, ग़ज़ल, क्षणिकाएँ, मुक्तक आदि लिखने का व्यसन; देश की पत्र-पत्रिकाओं में प्रायः प्रकाशित।

समय समय पर लघु-पत्रिका व स्मारिकाओं का सम्पादन। सम्प्रति 'समाज विकास' मासिक पत्रिका के सम्पादक मंडल के सदस्य।

सत्यं शिवं सुन्दरम्



सत्य को परख रहा हूँ
बुराई को पाल रहा हूँ
विषमता को सह रहा हूँ। सत्यम्···

शिव को जान रहा हूँ
काम को जगा रहा हूँ
राम को मिटा रहा हूँ। शिवम्···

सुन्दरता समझ रहा हूँ
दिखावा अपना रहा हूँ
मुखौटा लगा रहा हूँ। सुन्दरम्···

सत्यं शिवं सुन्दरम्! ❋

स्थिति



तुम खेत के बिजूका मात्र हो,
जहाँ किसी ने खड़ा कर दिया, वहाँ खड़े हो।

स्वयं तो तुम कुछ कर नहीं सकते,
दूसरा कोई अच्छा बुरा कुछ भी क्यों न करे
न तुम समर्थन कर सकते, न विरोध।

किसी को झपट्टा मारने से, नोचने से रोक भी नहीं सकते,
यह बात और है कि कौवे-कबूतर की तरह के
लोग तुम से वैसे ही डर जाते हो।

तुम न किसी शुभेच्छा या आगन्तुक का स्वागत ही कर सकते,
भले ही वह विचारा इस मुगालते में रहे
कि तुम उसकी अगवानी में खड़े हो।

किसी को दिशा बोध भी तो नहीं दे सकते तुम,
तुम्हारी जड़ स्थिति से लोग कभी कभार
यों ही भूलचूक से दिशा का अंदाज पा लेते होंगे।

—यानी तुम हर्ष शोक, कर्म-अकर्म सबसे परे हो,
पूर्ण निष्काम हो,
शायद स्थितिप्रज्ञ हो,
बिजूका तो हो ही! ❁

गंगा मात खा गई



तुम्हारी उन्मुक्त हँसी—
इतनी कलकल, रसमय, पावन है,
कि भादों की
उच्छ्वसित गंगा भी मात खा जाती है।

और कभी तुम्हारी वही हँसी—
इतनी मंद, नीरस, शुष्क हो जाती है
कि जेठ की
उदास गंगा फिर मात खा जाती है। ✿

चेतना-चट्टान



मन चेतना की चट्टान
तुम खिसको, गलो, चाहे तड़ाक से टूटो,
व्यर्थ में जगह घेर रही
तुम्हारा क्या प्रयोजन, धत् !

माया की रिक्त, गीली मिट्टी में
मोह के बीज बोने दो,
तब कुंठा के नीर और
धधकती ईर्ष्या की धूप से
वासना का अक्षय वृक्ष उगेगा,
खूब चौड़ा, खूब ऊँचा !

उसकी सघन भ्रम की छाया में
मन का पंछी विचरेगा,
और उसके रसीले, लोलुप फल का
भोग करेगा। ●

मेरे अरमान



मेरे अरमानों को विष पिलाया गया है
पर विष पीकर तो वे और भी जीवंत हो गये,
और भी बौरा गये
प्रबल, प्रचंड !

अब मेरे अरमान विष पीकर
निडर बन गये हैं
उनका भय जाता रहा
अब उनका कोई क्या बिगाड़ लेगा !

मृत्युंजयी बन गये मेरे अरमान
भोगोन्मुख हो गये
तीन मुखों से—
सत्, रजस्, तमस्—
भोग भोगने को आतुर, अधीर ! *

दुःखों की ममी



मैं दुःखों की एक ममी हूँ
जो अनन्त काल से यों ही पड़ी है।
पर इस तावूत को—
कोई झांकता तक नहीं।

सुनता हूँ एक काल खंड के बाद
ममी सड़ने, गलने लगती है,
पर मेरी ममी पर ऐसा लेप चढ़ा है,
ऐसा आवरण लगाया गया है
कि वो हमेशा, हमेशा यथावत रहेगी—
गर्मी-वर्षा-शीत,
झंझा-ज्वाला-हिमपात—
अपरिवर्तनीय,
और उपेक्षित भी अब तक की तरह! ❁

वे रिश्ते



वे रिश्ते
जो कभी
गुलाब की तरह खिले थे
मनुहार की वाटिका में
महके थे,
जिनपर स्नेह के भौंरे गुनगुनाते थे,
लगता है अब
अहं के कीड़ों से
कुतरे जा रहे!

वे रिश्ते
जो कभी
हृदय की तरह धड़के थे
प्यार की शिराओं में
थिरके थे,
लगता है अब
संदेह के कैंसर से
रिसते जा रहे!

वे रिश्ते
जो कभी
वाद्य की तरह बजे थे
भावना की भंगिमा में
खनके थे,
लगता है अब
कुंठा के आघात से
टूटते जा रहे! ●

अपने लोग



अनजानी भीड़ भरी
ठेल ठाल की दुनिया में,
लोग, घिनौने और बनावटी मुखौटे लगाये रहते हैं—
किंतु जाने-पहचाने
आत्मीय-स्वजन, दोस्त-अहबाव
ये तो अपने हैं,
दुख सुख के भागीदार,
साथ रोकर दुख कम करनेवाले
साथ खिलखिलाकर आनन्द बढ़ाने वाले—
इस विशाल जीवन सागर में प्रकाशद्वीप समान अपने लोग!
मैं आश्वस्त था।
मेरी ज़िन्दगी की कश्ती आगे बढ़ती जा रही थी।

अचानक आया एक ज्वार
कश्ती लगी हचकोले खाने,
किनारा पाने के लिये
एक के बाद दूसरे और फिर दूसरे
प्रकाशद्वीप की ओर—
असहाय बढ़ती रही मेरी कश्ती!

किंतु!
भय मिश्रित आश्चर्य के मारे
मेरी आँखें फटी की फटी रह गईं—
मेरी कश्ती ज्यों ही किसी प्रकाशद्वीप की ओर बढ़ती
मालूम नहीं क्यों उस द्वीप का प्रकाश लुप्त हो जाता।
सामने दिखती—
तट विहीन निविड़ रजनी, घोर निराशा।

न जाने मेरी कश्ती का क्या हश्र होगा! •

बेजोड़



आज अर्जुन को
बेजोड़
अजेय
अद्वितीय बनने के लिए
केवल
द्रोणाचार्य की एकनिष्ठ अनुपम शिक्षा
गुरुनिष्ठ कोमल मना एकलव्य का अंगूठा
तेजस्वी दानवीर कर्ण का सूतपुत्र घोषित किया जाना ही
काफी नहीं है
बल्कि
अपने प्रतिद्वन्द्वी
पूज्य पितामह भीष्म के
वध के लिए किसी शिखण्डी की आड़
और किसी छलिया कृष्ण का
सारथ्य भी चाहिए। *

उसके हिस्से



देख रहे हो न !
चमकते हुए नगीनों को,
खिलखिलाते हँसी के फव्वारों को,
वह किसी अभागे का ही पसीना है।

दमकता है किसी द्वारकाधीश का भवन
पर वह दीन सुदामा रहता मगन गरीबी में
अम्बर के मोती भवनों तक रह जाते
पर अम्बर तकते रह जाते उसके दो मोती।

फसल लहरती खेत में
क्षुधा लहरती पेट में
मस्त मचलती सोने की बाली
वह सोने के समय तड़पता,
चमन हुलसता, फूलों से भरता
वह तरसता एक फूल को, एक कली को।

खानों में वैभव का सागर
रीती है पर उसकी गागर,
दुनिया की किस्मत भरी हाथ में उसके
पर उसके खाली हाथ, खुद उसकी किस्मत फूटी।

धुएँ के सिंधु को मथ,
उसके श्रम का शेषनाग
करता पैदा काली लक्ष्मी और मद अमृत
पर उसके हिस्से केवल कालिख और हलाहल। *

सपना



कभी दिवास्वप्न देखा करता था
अब तो रात को भूलकर भी सपना नहीं आता।

एक रात मैंने एक बड़ा अजूबा सपना देखा—
हाँ, सचमुच सपना था
देखा, भगवान ने घुसपैठिये की तरह
धीरे से मेरे कमरे में प्रवेश किया,
और चुपचाप तलाशने लगे वर्षों से पड़े मेरे एक टूटे सन्दूक को।

एक बार तो मेरा भगवान के प्रति विश्वास हिल गया,
उसकी नीयत पर सन्देह हुआ
क्या यह मेरे मेडल व सर्टिफ़िकेट चुराने आया है,
जिसे अपने किसे प्रिय सखा को देगा !

मेरा अनुमान ग़लत था
सर्वशक्तिमान ने
बेकार पड़े मेरे मेडलों व सर्टिफ़िकेटों को
निकाला, देखा,
मुस्कराया और हँसा
उसने उनपर अपना मोरपंख फिराया—

आश्चर्य !
देखा
उसने निमिषमात्र में
जंग लगे मेरे मेडलो को
भाँति-भाँति के चमचमाते उपकरणों में बदल दिया
और
दीमक चाटे मेरे सर्टिफ़िकेटो को
नये नये सरकारी नोटों में ! ●

आज का युद्ध



उस दिन
जब एक वृद्ध,
एक रोगी
और एक शव को
देखकर
गौतम अधीर हो गया।

हो गया विचलित तो वह
पत्नी, पुत्र को छोड़कर
ज्ञान प्राप्त करने
दुखो से छुटका पाने के लिये
जंगलों में भटका था।

आज का गौतम सचमुच बुद्ध है,
ज्ञानी है, अनुभवी है, प्रकाशित है।
उपेक्षित वृद्ध, तडपते रोगी व अधनंगी लाश
को देखकर भी
वह धीर है, शांत है, कर्म के मोर्चे पर डटा है,
पलायन नही करता
वह अपनी यशोधरा, अपने राहुल का त्याग नहीं करता!

वह व्यावहारिक है, भविष्य द्रष्टा है,
उनके लिये कई तरह के उपकरण, सुविधाएँ
मुहैया करने के लिये
देश विदेश का पर्यटन करता है वह
और चापलूसी, तिकड़म व रिश्वत के
महान त्रिसूत्री सिद्धांतो को प्रयोग में लाता है
ताकि वह और उसका परिवार इन वस्तुओं से वंचित रहकर
अकारण दुख न पाये
और उनका बिना उपभोग किये ही
असमय ही जरा, रोग व मृत्यु को न प्राप्त हो जाय!

बुद्धं शरणं गच्छामि! *

शारदा अग्रवाल

शारदा अग्रवाल



जन्म : २६ जनवरी १९१६

शिक्षा : साहित्यरत्न, एम. ए. (हिन्दी)
उर्दू, फारसी का अध्ययन।

रुचि : संगीत (सितार) अभिनय

वित्त निदेशक

(१) साइको प्राइवेट लि०, कलकत्ता

(२) जयश्री उद्योग प्रा० लि०, पटना

कविता शब्द नहीं है,



कविता शब्द नहीं है,
शब्दों का खेल नहीं है,
सृजन की सैकड़ों
प्रक्रियाओं के पश्चात,
जन्म लेता है
कोई एक फूल,
शिशु,
या कविता। *

प्रश्नों की बौछार



प्रश्नो की बौछार
और एक चुप,
सूरज कभी भी निकल सकता है,
चीख़ों को दबाने के लिए
सचमुच,
चीखना भी पड़ता है ! *

उन क्षणों में



उन क्षणों में,
जब पिघलने लगती हैं शिराएँ
तीव्रतर होता है रक्त-संचार
टूट जाता है साँसों का
व्यवस्थित क्रम,
चेहरा सिमट आता है
अधखुली
अजनबी होती हुई आँखों में
सारे अस्तित्व को भूलकर
एक दूसरे में समाने लगते हैं
शरीर, मन और प्राण।

उस समय,
लहरें नहीं,
सागर मचल उठता है
तट पाने के लिए,
क्षितिज को नकारता हुआ
आकाश और धरती का यह मिलन
प्रकृति को सार्थक करता है,
उसे पूर्णता देता है। *

ज़िन्दगी के सिमटे हुए लम्हे



ज़िन्दगी के सिमटे हुए लम्हे
झुठलाते हैं ख्वाबों की हकीक़त को
और झुठलाने का यह फ़रेब
आज मैंने कंधों से उतार फेंका है।

आज मैं ख़ुश हूँ
हवा में उड़ता है फटा क़ाग़ज़
आज मैं ख़ुश हूँ
क़ाग़ज़ के उसी टुकड़े की तरह
ज़िन्दगी का नया गीत लिक्खा है जिसपर
और
अब तक जो क़ैद था
क़ीमती जिल्दवाली
मोटी क़िताब की
अंधेरी तह में। ✽

मुझे



मुझे
अनगिनत पर्तों की तह में
चारों ओर से घिरी चहार दीवारी की क़ैद में
असंख्य तानों-बानों से जकड़ कर
तुम निश्चिन्त हो !

पर यह भी तो हो सकता है
कि पर्तें धूल की हों,
दीवालें बालू की हों,
और ताने-बाने
कच्चे धागों के हों ! *

कुछ भी समझकर



कुछ भी समझकर
खुद को समझाना
किससे होता है !

एक ही धुरी पर घूमते हैं
सारे प्रश्न,
और वह भी स्पष्ट है,
फिर भी,
अनमाने मन को मनाना,
कैसे होता है,
किससे होता है !

जुड़ जाती है टूटी हुई कड़ियाँ,
और अक्सर
बहकते हैं सम्हले क़दम ही,
संभावनाओं के धुंधले क्षितिज पर चलना,
कब तक होता है,
किससे होता है ! •

ओ पुरुष



ओ पुरुष
तुम्हारा ही काँपता थरथराता हाथ
बढ़ा था पहली बार
और उसके छिटक कर दूर हटते ही
निस्तेज हो गई थीं
तुम्हारी आँखों की
प्रदीप्त दीप शिखाएँ।

तुम्हारी उस मलिनता से
अभिभूत होकर
समर्पित कर दिया था उसने
अपना सब कुछ,
और दौड़ती रही थी
मलय गंध की
उड़ती लहरों के साथ-साथ।

जानते हो!
किस खतरनाक घाटी में
उतर आई है वह आज,
कि जहाँ
पग-पग पर फिसलन है,
डर है आस-पास खड़ी
निगल जाने वाली
परछाइयों का,
और सामने है
अंधेरे का काला समंदर।

क्या प्रेम की
यही परिणति है! *

ढेरों विसंगतियों के बीच



ढेरों विसंगतियों के बीच
सुरक्षित है अस्मिता।

आज भी भली लगती है चाँदनी,
किलकिलाती हँसी,
तुम्हारा स्पर्श।

मैंने जिया है धधकता रेगिस्तान
ढोयें हैं निर्जीव सम्बन्धों के शव
झेली हैं अपने होने की तमाम
आदिम यातनाएँ।

फिर भी,
सुख और दुःख की परिभाषा
मेरी अपनी है,
मुझमें रची बसी है तुम्हारी गंध,
तुम्हारा रस,
तुम्हारा रूप!

और मैंने देखा है,
प्रस्तर हिम-शिखरों के
हृदय तल में
जीवन जल
प्रवहमान है। •

मौन, अवचेतन



मौन, अवचेतन
युगों से जड़,
प्रतीक्षा रत,
किसी प्रस्तर शिला-सी
शाप भ्रष्टा एक काया
वह अहल्या !

द्वार सारे बन्द
पथराई हुई आँखें,
एक जैसे
धूप, पतझड़ और बादल,
एक मन में टेर आकुल
कहाँ प्रभु के परम पावन चरण !

आज शापित
एक सारा देश,
पूरी एक पीढ़ी
अब स्वयं गौतम निमंन्त्रित
इन्द्र से
अभिसार नित करती अहल्या !

हृदय कंपनहीन,
मन, मस्तिष्क सब जड़,
यंत्र चालित देह
जीवन मात्र अभिनय,
किसकी प्रतीक्षा करें !
राघव कहाँ ? ❁

अनुत्तरित ही रहें सारे प्रश्न



अनुत्तरित ही रहें सारे प्रश्न,
भाषा मत दो,
मौन को मौन ही रहने दो ।

तुम्हें नहीं मालूम
पलाशवन क्यों दहक उठता है,
क्यों खिलते हैं गुलमोहर के फूल,
जाने कौन-सी बात कह गया था
अजानी हवा का कोई एक झोंका
मन सिहर सिहर उठता है
फूल बनती हुई
उस नई कली का ।

अनुराग जकड़न से नहीं,
छुअन से झरता है,
भाषा शब्दों से नहीं
भाव से बनती है ।

गढ़ लो
कितने ही मायावी शब्द
भाषित नहीं हो पायेगा मुखरित मौन,
अंगों का विहँसता हुआ मधुमास
श्वासों के सप्तक का आरोह
नयन-पलकों पर रची समर्पण-गीतिका
उसी,
चिर सनातन सत्य-कथा की
पांडुलिपि है,
भाषा की आत्मा है ।

शब्द मत गढ़ो
मौन को मुखरित होने दो
उसे मौन ही रहने दो ! *

दौड़ती चली गई



दौड़ती चली गई
समा गई
सागर के अंक में
शेष रहा केवल प्रवाह !

उसे मत पुकारो,
वापस कभी नहीं लौटती
न नदी
न ज़िन्दगी ! ●

पहर पहर रात ढली



पहर पहर रात ढली
जीत गई गुमसुम

सपने सब सिमट गये
नीर भरी आँखों में अनकही कहानी के
फूल झरे शाखों से
एक कली खिल न सकी
बदल गया मौसम

पहर पहर रात ढली
जीत गई गुमसुम

मचल गई सोन किरन
कुंदनिया घेरों में
बंजारे गीत बिके
दूधिया सवेरों में
कौन सुने व्यथा-कथा
मौन रहा सरगम

पहर पहर रात ढली
जीत गई गुमसुम •